International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 3, March- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

कौटिल्य की आय एवं करनीति

डॉ. निहाल सिंह
सहायक आचार्य, संस्कृत
महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
भरतपुर
Email Id - nihal.imalia@gmail.com

संस्कृत साहित्य में प्राचीन भारत में प्रचलित अनेक राज्य प्रणालियों का उल्लेख मिलता है। कई उतार–चढ़ाव आते रहे। कुछ राज्य तो सर्वथा नष्ट हो गए। कुछ ने वहीं संघर्षरत रहते हुए अपने अस्तित्व को कायम रखा। इन राज्यों में प्रजातंत्र के पोषक संघातराज्यों का भी काफी योगदान था तथा उन्होंने एकराज्यशासन का बहिष्कार किया। चाणक्य ने शाम और दाम नीति से शक्तिशाली संगठनों को वश में किया। कौटिल्य के अनुसार संगठन रहित राज्य को दंड और भेद नीति से जीता जा सकता है। प्राचीन काल में विघटित छोटे–छोटे राज्यों को एक संघराज्य में समाविष्ट किया जाता था। इस प्रकार एकसंघराज्य राजा द्वारा शासित तथा अपर बिना राजा के संघराज्य। कौटिल्य के अभिमतानुसार दंडलाभ और मित्रलाभ दोनों की अपेक्षा संघलाभ उत्तम होता है।

कौटिल्य भी एकराज्यशासन प्रणाली के समर्थक रहे हैं, क्योंकि इस प्रणाली में राजा ही राज्य का एकमात्र कर्ता–धर्ता होता है, जो अपने मंत्रियों के परामर्श से शासन चलाता रहता है। मंत्रियों के ऊपर ही राजा, प्रजा एवं सम्पूर्ण राज्य निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में जैसा कि महाकवि भारवि का कथन यहां उल्लेखनीय है –

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं, हितान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।।[1]

अर्थात् जो राजा को अच्छी सलाह न दें, वह बुरा मंत्री होता है। जो हित की बात को भी नहीं सुने वह किंप्रभु अर्थात बुरा राजा होता है। राजा और मंत्री दोनों के परस्पर अनुकूल होने पर ही राज्य की समस्त संपत्ति निरंतर वृद्धि को प्राप्त होती हैं। स्वर्गाधीश्वर राजा इंद्र का सहस्राक्ष अभिधान की पृष्ठभूमि में भी यही बात है, क्योंकि उनके 1000 से भी अधिक मंत्री थे। अर्थशास्त्र की दृष्टि से मंत्री के बिना राजा का कोई अस्तित्व नहीं होता। कौटिल्य साम्राज्य को एक गाड़ी के रूप में देखते हैं जिसके दो पहियों के रूप में राजा और मंत्री होते हैं।

उक्त दोनों के परस्पर अनुकूल होने पर राज्य निरंतर वृद्धि के पथ पर अग्रसर होता रहता है, पुनरपि राजा को राज्य के कोषवृद्धि एवं प्रजासौख्य का ध्यान रखना चाहिए।

राज्यवृक्षस्य नृपतिर्मूलं स्कन्धाश्च मन्त्रिणः।
शाखाः सेनाधिपाः सेनाः पल्लवाः कुसुमानि च।

प्रजा फलानि भूभागा बीजं भूमिः प्रकल्पिता।।[२]

अर्थात् राजा राज्यरूपी वृक्ष का मूल है। मंत्रिपरिषद् उसका धड़ या स्कन्ध है, सेनापति उसकी शाखाएं हैं, सैनिक उसके पल्लव हैं, प्रजा उसके पुष्प हैं, देश की सम्पन्नता उसके फल हैं और समस्त देश उसका बीज है।

शुक्ल यजुर्वेद में भी कहा है –

अस्मे वोऽस्त्विन्द्रिमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वचांसि सन्तु वः। नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोसि धरुणः कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।।[3]

यह राष्ट्र तुम्हें सौंपा जाता है तुम इसके संचालक, नियामक और उत्तरदायित्व के दृढ़वाहन करता हो। यह राज्य तुम्हें कृषि की कल्याण संपन्नता, प्रजा के पोषण के लिए दिया जाता है। राजा के लिए प्रथम प्रतिज्ञा राष्ट्रहित और प्रजाहित होना चाहिए।

राजस्व के साधन

राज्य के संवर्धन व संरक्षण हेतु आवश्यक है कि राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी रहे इस हेतु कौटिल्य की अर्थनीति के अनुसार उद्योगों की पूंजी, श्रम, प्रबन्ध आदि राजकीय उच्च स्तर के उद्योगों से एक सशक्त आत्मनिर्भर और सर्वसाधनसुलभ राज्य की स्थापना संभव है। कुछ जनता से संबंधित एवं निजी संपत्ति के रूप में भी हैं। इसके संघटन, संचालन, पूंजी, श्रम एवं प्रबंध का दायित्व राज्याधीन न होकर नागरिकों पर ही होता है। इन राजस्व के साधनों में कृषि, भवननिर्माण, पशुपालन आदि सम्मिलित हैं। इनसे होने वाली आय से राज्य के श्रमिक व नागरिक धन संपन्न होते हैं। कुछ ऐसे उद्योग होते हैं जिन के उत्पादन, वितरण एवं उपभोग पर राज्यशासन का नियंत्रण बना रहता है।

कौटिल्य ने त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति हेतु अर्थ की अनिवार्यता पर बल दिया है। यही अर्थ जब राज्यकर के रूप में एक संरक्षित स्थान पर एकत्र करके रखा जाता है, तब उसी स्थान को राजकोष कहा जाता है।

राज्य उन्नति एवं सुरक्षा के लिए कोष का होना राज्य के लिए बहुत आवश्यक है। कोषविभाग के कार्मिकों को, सुरक्षा को, समृद्धि के उपाय, आय के साधन और क्षय के कारणों पर कौटिल्य ने बड़ी ही सूक्ष्मता से विचार किया है। राज्य में विभिन्न वर्गों, वस्तुओं, गांव, नगर, घरों, व्यवसाय, शिल्पियों, भूमि पर निर्धारित किए गए राज्यांश को संचित करने हेतु एवं उसका संपूर्ण विवरण रखने हेतु 'समाहर्ता' होता था जो कोषगृह, पण्यगृह (राजकीय विक्रय वस्तुओं का स्थान), कोष्ठागार (भाण्डारगृह), कुप्यगृह (अन्नागार), शस्त्रागार और कारागार का निर्माण करवाता है।

सन्निधाता कोशगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत्।[४]

सीलरहित स्थान में बावड़ी के समान एक चौरस गढ़ा खुदवाकर चारों ओर से उसकी दीवारों और उसके फर्श को मोटी मजबूत शिलाओं से चुनवाना चाहिए। उसके बीच में मजबूत लकड़ियों से बने हुए पिंजरे के समान अनेक कोठरियाँ हों; उसमें तीन मंजिलें हों; तीनों मंजिलों में बढ़िया दरवाजे तथा सुन्दर फर्श हों; ऊपर–नीचे चढ़ने–उतरने के लिए उसमें लिफ्ट लगा हो, उसके दरवाजों पर देवताओं की मूर्तियाँ अंकित हों, इस प्रकार का एक भूमिगृह (तहखाना) बनवाना चाहिए। उस भूमिगृह के ऊपर एक कोषगृह (खजाना) बनवाना चाहिए, उस पर भीतर–बाहर से बन्द की जाने वाली अर्गलाएँ हों, एक बरामदा हो, पक्की ईंटों से उसको बनाया गया हो, एवं वह चारों ओर अनेक पदार्थों से भरे हुए मकानों से घिरा हो। जनपद के मध्यभाग में प्राणदण्ड पाये पुरुषों के द्वारा, आपत्ति में काम आने वाला एक ध्रुवनिधि (गुप्त खजाना) बनवाना चाहिए।

चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरुभयतः पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुपंजरं भूमिसमत्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तं सोपानं देवतापिधानं भूमिगृहं कारयेत्। तस्योपर्युभयतोनिषेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनी परिक्षिप्तं कोशगृहं कारयेत्, प्रासादं वा। जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत्।[५]

समाहर्ता (कलक्टर जनरल) को चाहिये कि वह दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज और व्यापार सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे।

समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत।[६]

राजकोष के संचय के साधनों में दुर्ग, राष्ट्र, खान, सेतु, वन, वणिक्पथ आदि को कौटिल्य ने 'आयशरीर[७]' कहा है। नारदस्मृति में भी कहा है –

अन्यप्रकारादुचिताद् भूमेः षड्भागसंज्ञितात्।
बलिः स तस्य विहितः प्रजापालनवेतनम्।।[८]

राजा के लिए भूमि की उपज का षष्ठांश भूमिकर के रूप में चुकाना किसानों अथवा भूस्वामियों का कर्त्तव्य कर्म है। वस्तुतः प्रजापालन करने में तथा राजा की निजी आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय होने वाले धन की पूर्ति प्रजा को ही तो करनी होती है।

स्वभागभृत्या दास्यत्वे प्रजानां च नृपः कृतः।
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा।।[९]

प्रजा अपनी रक्षा के फलस्वरूप राजा को राज्यनिर्वाह के लिए उचितांश दिया करे।

राज्य की वित्तीय स्थिति जैसी होती है, तदनुकूल ही राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति निर्भर करती है। इसलिए राजकोष के स्रोत राज्यांश, कृषिकर, उपज का अंश, धार्मिक, आयात–निर्यात कर आदि को व्यवस्थित प्रकार से संचित करना चाहिए। यही राज्य के लिए श्रेयस्कर होता है।

राजकर – राजकर का संबंध सीधा–सीधा प्रजा से होता है, इसलिए राज्य कर निर्धारित करते समय जनता के प्रमुख प्रतिनिधियों से परामर्श कर लिया जाता है। फलस्वरूप बिना किसी विवाद के राज्यकर एकत्रित हो जाता है। महाभारत में राजकर के विषय में उल्लेख कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है–

बलिषष्ठेन शुक्तेन दण्डेनाधापराधिनाम्।
शास्त्रानीतेन लिप्सेथा वेतनेन धनागपम्।।
दापयित्वा करं धर्म्यं राष्ट्रं नीत्या यथाविधि।
तथैतं कल्पयेद्राजा योगक्षेमतन्द्रितः।।[१०]

अन्न का छठा भाग कर लेकर, शास्त्रानुसार अपराधियों को दण्ड देकर और चौकीदार रखकर रक्षित किये हुए व्यापारियों के दिये हुए धन से राजा को अपना खजाना भरना चाहिये। राजा को शास्त्र में कही हुई नीति अनुसार देश में से धर्मानुसार कर लेना चाहिये, राज्य की व्यवस्था अच्छी प्रकार करे।

करवसूली के नियम – शुल्कव्यवहार (उपयुक्त कर वसूली) के तीन प्रकार हैं–

- बाह्य (अपने राज्य में उत्पन्न वस्तुओं की चुङ्गी)।
- आभ्यन्तर (राजमहल तथा राजधानी के भीतर उत्पन्न होने वाली वस्तुओं की चुङ्गी)।
- आतिथ्य (विदेश से आने वाले माल की चुङ्गी)।

शुल्कव्यवहार के दो भाग हैं –**शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम्; निष्क्राम्यं प्रवेश्यं च शुल्कम्।**[११]

१. निष्क्राम्य – बाहर जाने वाले माल पर लगाई गई चुङ्गी निष्क्राम्य कहलाती है।

२. प्रवेश्य – बाहर से आने वाले माल पर लगाई चुङ्गी को प्रवेश्य कहते हैं – **प्रवेश्यानां मूल्यपंचभागः।**

कर (लागत का हिस्सा)	वस्तु
पांचवां हिस्सा	आयात माल पर।
पांचवां हिस्सा	नगर के प्रधान द्वार से प्रविष्ट होने वाली वस्तुओं पर – द्वारादेयं शुल्कपञ्चभागः आनुग्राहिकं वा यथादेशोपकारं स्थापयेत्।
छठा हिस्सा	फूल, फल, साग, गाजर, मूल, शकरकन्द, धान्य, सूखी मछली और मांस –पुष्पफलशाकमूलकन्दवल्लिक्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं गृह्णीयात्।
विशेषज्ञों, पारखियों, वेतन धारी व्यक्तियों द्वारा निर्धारित	शंख, हीरा, मणि, मुक्ता, प्रबाल और हार – शंखवज्रमणिमुक्ताप्रवालहाराणां तज्जातपुरुषैः कारयेत्, कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफल निष्पत्तिभिः।
दशवां या पन्द्रहवाँ हिस्सा	मोटे तथा महीन रेशमी कपड़ों, कीमखाब, सूती कवच, हरताल, मैनसिल, हिङ्गुल, लोहा, गेरू, चन्दन, अगर पीपल, (कटुक), मादक बीजों से निकाला गया द्रव्य, शराब, हाथीदाँत, मृगचर्म, रेशमी धागे, बिछौना,

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 3, March- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

	ओढ़ना, अन्य रेशमी वस्त्र और बकरी तथा भेड़ की ऊन के बने कपड़ों आदि पर। क्षौमदुकूलक्रिमितानकङ्कटहरितालमनःशिलाहिङगुलुक—लोहवर्णधातूनां चन्दनागुरुकटुककिण्वावराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूल निकरास्तरणप्रावरणक्रिमिजातानामजैलकस्य च दशभागः, पंचदशभागो वा।
बीसवाँ या पच्चीसवाँ भाग	मामूली सूती कपड़ों, चौपायों, दुपायों, सूत, कपास, दवाई, लकड़ी, बाँस, छाल, बैल आदि का चमड़ा, मिट्टी के बर्तन, अनाज, घी, तेल, खारा नमक, शराब और पके हुए अनाजों पर — वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्धभैषज्यकाष्ठवेणुवल्कचर्ममृदभाण्डानां धान्यस्नेहक्षारलवणमद्यपक्वान्नादीनां च विंशतिभागः पंचविंशतिभागो वा।

सभी टैक्स या कर को इस ढंग से नियत करें कि देश का उपकार हो। महाभारत के अनुसार राजकर ऐसा होना चाहिए जो प्रजा पर भारस्वरूप सिद्ध न हो। राजा को अपना आचरण उस मधुमक्खी के समान रखना चाहिए जो वृक्षों को बिना कष्ट दिये उनसे मधु का संचय करती है।

आय के प्रकार –

आचार्य कौटिल्य के अनुसार वर्तमान, पर्युषित और अन्यजात भेद से आय त्रिधा होती है –

वर्तमानः पर्युषितोऽन्यजातश्चायः। दिवसानुवृत्तो वर्तमानः। परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः। नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं डमरगतकस्वमपुत्रकं निधिश्चान्यजातः। विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः। विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसङ्घर्षे वा वृद्धिरित्यायः।[१२]

प्रतिदिन की आमदनी को 'वर्तमान' आय कहा जाता है, पिछले वर्ष का बकाया अथवा शत्रुदेश से प्राप्त धन 'पर्युषित' आय है, भूले हुए धन की स्मृति, अपराधस्वरूप प्राप्त धन, कर के अतिरिक्त अन्य उपायों या प्रभुत्व से प्राप्त धन, कांजीहाउस से प्राप्त धन, भेंटस्वरूप प्राप्त धन, शत्रुसेना से अपहृत धन और लावारिस का धन 'अन्यजात' आय कहलाती है। इसके अलावा सैनिकखर्च से बचा धन, स्वास्थ्य विभाग के व्यय से बचा हुआ धन और इमारतों के बनवाने से बचा हुआ धन, व्ययप्रत्याय कहलाता है। यह भी एक प्रकार की आय है। बिक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने से, निषिद्ध वस्तुओं के बेचने से, बांट–तराजू आदि बेईमानी से व खरीदारों की प्रतिस्पर्धा से प्राप्त धन भी आमदनी का धन है।

एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् ।
हास व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम्।।[१३]

समाहर्ता को चाहिए कि वे ऊपर निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राज्य के धन का संग्रह करें और आय–व्यय में लाभ हानि का लेखा–जोखा ठीक रखे। यदि किसी अवस्था में भविष्य की विशेष आय की आशा में पहले अधिक व्यय भी करना पड़े तो वैसा करके आय को बढ़ाये।

जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का जल सोखता है, उसका सहस्रगुणा जल ला बरसाता है, वैसे ही राजा को भी प्रजा से जो कर मिले उसे प्रजा की भलाई में ही लगा देना चाहिए। जैसा कि राजा दिलीप का चरित्र रघुवंश महाकाव्य में दिखाया गया है –

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।[१४]

इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कुछ इस तरह दर्शाया है –

बरसत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ।।

राजा को सम्पत्ति के संग्रह और वितरण में सूर्य और इन्द्र की भांति होना चाहिए। कर वसूली में माली एवं मधुमक्खी की तरह होना चाहिए। करारोपण धीरे–धीरे कोमलतापूर्वक और उचित समय में किया जाना चाहिए। कौटिल्य के अनुसार राजा को अपनी प्रजा के प्रति क्रूर और निष्ठुर हुए बिना अपने कोष का भरण करना चाहिए।

आपस्तम्ब के अनुसार किसी भी राजा के राज्य में किसी को भी गरीबी या उपेक्षा के कारण भूख और रोग की तकलीफ नहीं होनी चाहिए। आचार्य गौतम ने भी आजीविका में अक्षम प्रजा के पालन का दायित्व राजा का बताया है।

---

१ किरातार्जुनीयम् 1.5

२ शुक्रनीति 5.12

३ शुक्लयजुर्वेद 9.22

४ अर्थशास्त्रम् 2.5.1

५ तत्रैव 2.5.2

६ अर्थशास्त्रम् 2.6.1

७ शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षाररू सौवर्णिकरू पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम्। सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावरू पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्। सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशङ्खलोहलवणभूमिप्रस्तररसधातवः खनिः। पुष्पफलवाटपण्डकेदारमूलवापाः सेतुः। पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम्। गोमहिपमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः। स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः। इत्यायशरीरम्। मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम्। (अर्थशास्त्रम्)

८ नारदस्मृतिः 17.48

९ शुक्रनीति 1.88

१० महाभारत–शान्तिपर्व 71.10–11

११ अर्थशास्त्रम् 2.22.1

१२ अर्थशास्त्रम् 2.6.5

१३ तत्रैव 2.6.3

१४ रघुवंशम् 1.18